P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-1) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

जैन ग्रंथ चित्रों में संयोजनात्मक तत्त्व

रामावतार मीना
सहआचार्य एवं विभागाध्यक्ष,
चित्रकला विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
टोंक,राजस्थान

रघुवीर सिंह मीना
सहायक प्राध्यापक,
ए. बी. एस. टी. विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
टोंक, राजस्थान

सारांश

किसी भी देश की संस्कृति उसकी आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक उपलब्धियों की प्रतीक होती है। आदिकाल से आज तक मुनष्य रेखा तथा आकार, तक्षण तथा कर्षण के द्वारा अपनी भावनाओं को संयोजनात्मक तरीके से व्यक्त करता चला आ रहा है। इन असंख्य कलाकृतियों के आधार पर चित्रकला की आज एक निश्चित परिभाषा निर्धारित हो चुकी है। जैन ग्रंथ चित्रों पर गहन विचार करने पर निष्कर्ष रूप में प्राप्त होता है कि इन चित्रों में संयोजन के तत्त्वों/सिद्धान्तों यथा सहयोग, सामंजस्य, सन्तुलन, प्रभाविता, लय या प्रवाह एवं प्रमाण आदि का यथा स्थान समुचित प्रयोग किया गया है। चित्रों में रेखा का प्रयोग चित्रतल के विभाजन में करते हुये आकार परस्पर एक दूसरे से मिलकर मधुर सम्बन्धों की अभिव्यक्ति प्रकट करते हैं। चित्रों में वर्णों का समायोजन करते समय हल्की–गहरी रंगतों के नियोजन व पूर्ण विभिन्न रंगतों जैसे सम्बन्ध मिलकर दर्शक को अभिभूत करने में समक्ष हुये हैं। कहीं–कहीं जैन चित्रकारों ने चित्रित फलक पर कथा वस्तु के विभिन्न दृश्यों को चित्रित करने के उद्देश्य से अन्तराल को चार भागों में विभक्त किया गया है एवं अनेक दृष्टि बिन्दुओं से समझी गई वस्तुओं को सौन्दर्य पूर्ण तल समायोजना के अन्तर्गत ही आलेख्य स्थान को सजाया गया है, साथ ही क्षितिज रेखा को पर्याप्त ऊँचा रखा गया है, जिससे चित्रकार चित्रतल के भावों की अभिव्यक्ति हेतु भरपूर लाभ उठा सके। 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक के जैन ग्रन्थों में उक्त सभी कला सिद्धान्तों के आधार पर चित्र संयोजन का निर्माण कार्य देखने को मिलता है।

मुख्य शब्द : परिप्रेक्षता, क्षितिज रेखा, अन्तराल व्यवस्था, कल्पनाशीलता, कलात्मक तत्त्व, प्रभाविता, पृष्ठभूमि, चित्रतल, मध्यभूमि, अग्रभूमि, स्थानान्तरण, खण्डीय– अन्तराल, वर्ण विधान, तान आदि।

प्रस्तावना

11वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के बाद तक जैन धर्म के अनेक सचित्र ग्रंथ लिखे गये। इस प्रकार के ग्रंथों से भविष्य की कला शैली की आधार शिला तैयार होती है। इसी कारण इस कलाधरोहर का ऐतिहासिक महत्त्व है, भारतीय चित्रकला के इतिहास में ताड़पत्र एवं काग़ज पर की गई चित्रकारी की दिशा में जैन चित्रित ग्रंथों का प्रथम स्थान भी है। इन ग्रंथ चित्रों की शैली एक निजस्व लिये हुए हैं। चित्रों में गोलाई के साथ कोणीयता स्पष्ट दिखाई देती है। ज्ञातव्य है इन्हीं लाक्षणिक कोणीयता वाले जैन ग्रन्थ चित्रों द्वारा भविष्य की कला–शैली की एक आधारशिला तैयार हुई।

सचित्र जैन ग्रन्थ एकदीर्घ अवधि तक भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रमुखतः राजस्थान, गुजरात एवं उत्तर भारत के साथ ही मध्य क्षेत्र में तैयार किये जाते रहे हैं। अभी तक की खोजों के आधार पर प्राचीनतम् ताड़पत्रीय जैन ग्रन्थ, जैसलमेर के जैन भण्डार में स्थित 1060 ई. का 'औधनिर्युक्ति' प्राप्त हुआ है। 1060 ई. के उत्तरवर्ती काल के ताड़पत्रीय एवं कागदीय जैन ग्रंथ विपुल मात्रा में विभिन्न भण्डारों में संग्रहित हैं।

14वीं शताब्दी में पश्चिम भारतीय अथवा गुजरात शैली या जैन शैली में क्षेत्रीय प्रवृत्तियों के साथ ही विदेशी प्रभाव भी झलकता है। इस काल के जैन ग्रन्थ चित्र अत्यन्त अलंकृत हैं और इनके मूल पाठ सोने और चाँदी की स्याहियों से लिखे गये हैं। साथ ही फारसी कला से लिये गये स्वर्ण एवं नीले रंगों का प्रयोग इन जैन ग्रन्थ चित्रों में देखा जा सकता है। (देखिए चित्र सं.1,2,3)

1600 ई. के पश्चात् यह वह समय था जबकि जैन चित्रित ग्रंथों का निर्माण मुगल एवं राजपूत शैली में हुआ। उपर्युक्त जैन ग्रन्थ चित्रों से स्पष्ट हो जाता है कि 17वीं शताब्दी के आरम्भ से छोटे आकार के रंगीन चित्रों द्वारा कला की अभिव्यक्ति करना भारत में एक लोकप्रिय विषय बन गया था। चित्रकला की

कुछ विशेषताएँ जैसे–रेखाओं में कोणीयता एवं अधर में लटकी परली आँख का फैलाव आदि मुगलों के प्रभाव से पूर्व ही समाप्त हो गया था।

1556 ई. में दिल्ली के सिंहासन पर अकबर बैठा और उसके द्वारा किये गये सांस्कृतिक विकास में मुग़ल–संस्कृति के हिन्दु–संस्कृति में समाहित होने के फलस्वरूप मुग़ल चित्रकारों को भारतीय चित्रकारों के साथ मिलकर चित्रण करने की अकबर की आज्ञा व भारतीय चित्रकारों को आदर देना आदि इस काल में चित्रात्मक अभिव्यक्ति के लिये अत्यन्त निर्णायक प्रतिक्रिया सिद्ध हुई। जैन ग्रन्थ चित्रों पर इसका प्रभाव मानवाकृतियों और उनकी वेशभूषा के साथ ही चित्रण–प्रक्रिया एवं तकनीकी दक्षता में भी देखा जा सकता है।

अतः 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से शुरू हेाकर 1900 ई. तक यह वह समय था जबकि जैन ग्रन्थ चित्रों की चित्रांकन परम्परा अपने निजी स्वरूप से हटकर समय के साथ–साथ मुग़ल चित्र शैली के वृद्धिगत प्रभाव से संयुक्त हो गई थी। उक्त समयावधि में राजस्थानी एवं मुग़ल ये दोनों चित्र शैलियाँ एक ही काल में अपनी झीने आवरण से झाँकती हुई प्रस्फुटित हो रही थी। जैन ग्रंथ चित्र भी इन दोनों शैलियों के प्रभाव व संयोजनात्मक तत्त्वों से अछूते न रह सके। इनमें आकारगत प्रभाव मानवाकृतियों, पशु–पक्षी आकृति, स्थापत्यीय, प्रकृति–चित्रण, वस्त्राभूषण व अन्य सामग्री के साथ ही जैन ग्रंथ चित्रकारों ने समय के साथ–साथ मुग़ल व राजस्थानी शैलियों में प्रयुक्त चित्रण प्रक्रिया (तकनीकी) को अपने चित्रों में अपनाने लगे। जिसका प्रभाव वर्ण, रेखाओं व तकनीकी के क्षेत्र में पर्याप्त रूप से देखा जा सकता है। अब चित्रों में आकृतियों की भीड़–भाड़ के साथ ही मुग़ल व राजस्थानी शैली जैसी तल–व्यवस्था व चित्रों में यथार्थता का अधिकाधिक समावेश दृष्टव्य है। साथ ही कलागत व सौन्दर्यगत गुणों से भी ये अति समृद्धशाली हैं। जिनका कला के क्षेत्र में अपना विशेष योगदान है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय चित्रकला में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जैन ग्रन्थ चित्रों का अत्यधिक संख्या में प्राप्त होना व एकाएक उभरकर आना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि भारतीय चित्रकला में जैन ग्रंथ चित्र एक विशेष शैली का प्रतिनिधित्व करते है। साथ ही विभिन्न जैन विषयों को सामयिक प्रभावों व कलात्मक गुणों के साथ अपने चित्रांकन में स्थान देते हुये कला–सौन्दर्य एवं अति महत्वपूर्ण विभिन्न स्वरूपों को भारतीय चित्रकला में उपस्थित करते हैं और भविष्य में विभिन्न शैलियों को नये–नये प्रयोग एवं नये भाव–विधान दिये वे अतुलनीय है। अतः इन जैन ग्रंथ चित्रों में संयोजनात्मक तत्वों की पहचान करना हमारे ज्ञान को और समृद्ध करेगा। साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि जैन ग्रंथ चित्र किसी भी शैली से कम नहीं है। वे अपनी समकक्ष शैलियों के समक्ष अपने को स्थापित करने में सक्षम रहे हैं। भारतीय चित्रकला में जैन ग्रंथ चित्र अपना विशेष अर्थ एवं महत्त्व रखते हैं।

उपकल्पना

प्रस्तावित शोध–विषय में 16वीं शताब्दी के बाद चित्रित जैन ग्रन्थ चित्रों में संयोजनात्मक तत्त्वों का वर्णन करते हुए ग्रंथ चित्रण में आये परिवर्तन और अन्य शैलियों के चित्रण विधान के प्रभावों का सम्यक मूल्यांकन करना तथा चित्रण–विधान व संयोजनात्मक तत्त्वों पर विमर्श को सकारात्मक और सृजनधर्मी दिशा की ओर उन्मुख एवं प्रतिस्थापित की परिकल्पना की गई है।

शोध प्रविधि

प्रस्तावित शोध पत्र की अध्ययन विधि मुख्य रूप से व्याख्यात्मक एवं विवचेनात्मक है, जिसमें यथा स्थान उपलब्ध चित्रित ग्रंथ चित्रों के माध्यम से समझाया गया है। साथ ही पत्रिकाओं, पुस्तकों, इन्टरनेट आदि माध्यमों को भी प्रयोग में लाया गया है।

जैन ग्रंथ चित्रों में संयोजनात्मक तत्त्व

चित्रकार चित्रभूमि पर रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत एवं अन्तराल इत्यादि चित्र तत्त्वों के आधार पर चित्र कर्म का निर्माण करता है। चित्रभूमि पर चित्रों को किस प्रकार उचित ढंग से समायोजित किया जावे ताकि वह आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बने, यह चित्रकार के व्यक्तिगत अनुभव पर निर्भर करता है। इस प्रकार चित्र संयोजन में दो अथवा अधिक तत्त्वों की मधुर योजना समाहित होती है जिसमें एक तत्त्व की प्रधानता रहती है।[1]साथ ही, चित्र संयोजन करते समय चित्रकार को रेखा, रूप, वर्ण, तान, पोत इत्यादि में अपनी समस्त सृजनात्मक शक्ति का उपयोग करना होता है। इसमें रेखा का प्रयोग चित्र तल के विभाजन में सहायक होता है, जिसमें विभाजित हुए आकार परस्पर एक दूसरे से मिलकर मधुर सम्बन्धों की अभिव्यक्ति प्रकट करते हुए प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार वर्णों का चित्रों में समायोजन करते समय हल्की–गहरी रंगत के नियोजन व पूर्ण विभिन्न रंगतों जैसे सम्बन्ध मिलकर दर्शक को अभिभूत करने में सक्षम होते हैं। साथ ही उल्लेखनीय है कि चित्र संयोजन में एक तत्त्व चाहे वह रूप हो अथवा वर्ण इत्यादि की प्रधानता को चित्रकार प्रस्तुत करता है।[2]

कला सिद्धान्तों पर विवेचन करने पर निष्कर्ष रूप में प्राप्त होता है कि एक पूर्ण चित्र संयोजन के कला तत्त्वों में सहयोग सामंजस्य, सन्तुलन, प्रभाविता, लय या प्रवाह एवं प्रमाण इत्यादि ही आधार स्तम्भ होते हैं।

जैन ग्रंथ चित्रों के अध्ययनोपरान्त पता चलता है कि प्रारम्भिक ताड़पत्रीय व काग़दीय जैन ग्रन्थ चित्रों में चित्र संयोजन में रूप एवं वर्ण तत्त्वों की ही प्रधानता रही है। इन चित्रों में चित्र–तल पर संयोजन क्रमबद्ध–विवरणात्मक विधि यानी विभिन्न भागों की घटनाएँ चौकोर खानों में बना कर एक दो आकृतियों से ही तल व्यवस्था की है और सपाट वर्ण भरे गये हैं। (चित्र संख्या 1 से 3 तक)

जैन चित्रों को पहले सँकड़ी, आयताकार छोटी–सी तापड़पत्रों की भूमि मिली, फिर काग़ज के निर्माण के बाद 14वीं शताब्दी में थोड़े–बड़े आकार की काग़ज की भूमि मिली। इन दोनों ही धरातलों को बनाने का तकनीकी तरीका भिन्न था। चित्र छोटे–छोटे चौखटों व आयतों की सीमा में बँधे थे अतः यहाँ मानवाकृतियों व प्राकृतिक दृश्यों को उपस्थित करने का केवल सांकेतिक तरीका बच गया था। उस समय अन्य कठिनाईयों के साथ–साथ तकनीकी दुविधाएँ भी थी, जिनके कारण एक

ऐसी नई शैली के निर्माण की आवश्यकता थी जहाँ पिछली परम्परा से भी सूत्र बँधा हो तथा आने वाली कला के लिये भी कुछ उपलब्धियाँ हों। जैन कलाकारों ने यहाँ जिस कला की उद्‌भावना की वह दोनों छोरों को जोड़ती है।

अहमदाबाद में मुनि दयाविजय जी के शास्त्र–संगह में 'कल्पसूत्र' की एक प्रति है। इस पर संवत् तो नहीं दिया गया है, किन्तु संभवतः यह 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध या उससे भी बाद की है। इस स्वर्णाक्षरी प्रति में जैन शैली अपनी उत्तमता एवं आलंकारिता की पराकाष्ठा को छू जाती है। विद्वानों की सम्मति में इसकी बराबरी करने वाली इस शैली के समान कोई नहीं है, इसके हासियों पर राग–रागिनी एवं तान, मूर्छना व भिन्न–भिन्न नृत्यों और भाव–भंगिमाओं आदि के अनेक चित्र नाम सहित संयोजित किये गये हैं। संयोजन इस प्रकार है कि सभी को हतप्रभ कर देता है। इनमें ईरानी चित्रों की प्रतिकृतियाँ भी देखी जा सकती है।[3]

उत्तर मध्यकाल जैन चित्रित ग्रंथों का सर्वोन्मुखी विकास काल है। इस समय सैकड़ों नहीं हजारों की संख्या में सचित्र ग्रंथों की रचना हुई, यह एक नई शैली थी जिसमें 'आदिम कला' की अभिव्यक्ति थी, 'लोककला' का तीखापन था एवं कथा कहने की क्षिप्रता थी। 11वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक सारे उत्तरी भारत में ये जैन ग्रंथ चित्र प्रतिनिधि शैली के रूप में बने रहे है।[4] अब इन चित्रों में मानव मुखाकृतियों में आँख के अधिक भद्दे ढंग से लटका होना कम होता दिखाई देता है, जो पूर्व में ताड़पत्रीय ग्रंथ चित्रों में रहा है। साथ ही तीर्थंकरों की पूर्ण चश्म जैसी आकृति विधान के स्थान पर गोल, सवा चश्म मुखाकृति में नाक का चश्म से निकलना इनके सौन्दर्य में वृद्धि ही करता है। साथ ही पुरूष आकृतियों में छाती का उभार अस्वाभाविक ढंग से दिखाई देता है, ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी नारी आकृति का आकारहो। इसी प्रकार वृक्षों की आकृति अर्धवृत्ताकार एवं कहीं–कहीं अण्डाकार रूपों में संयोजित की है। वृक्षों के अलावा पर्वतों का अंकन–नुकीली आकृतियों के रूप में किया गया है।[5]

जैन ग्रंथ चित्रों का चित्रण कार्य लगातार 19वीं शताब्दी तक निर्बाध रूप से चलता रहा। 17वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी तक के जैन ग्रंथ चित्रों में उक्त सभी कला सिद्धान्तों के आधार पर चित्र संयोजन का निर्माण कार्य देखने को मिलता है। जैन ग्रंथ चित्रकार 17वीं शताब्दी तक आते–आते समकालीन राजस्थानी, मुग़ल एवं पहाड़ी इत्यादि शैलियों से प्रभावित होकर चित्रों का संयोजन करना प्रारम्भ कर दिया था। अब इनके चित्र संयोजनों में वृत्तान्त को सहज व विस्तार में चित्रित करने हेतु चित्रपट्ट को विभिन्न भागों में विभाजित कर दिया। प्रत्येक भाग घटना विशेष के अभिन्न एवं पूरक अंग की भाँति दिखाई देता है। जिससे चित्र विशेष के आधार पर उक्त संयोजन अविभाज्य ही रहा है। इस प्रकार का संयोजन विशेषतः मुग़ल चित्रों में भी अनेकानेक जगह देखने को मिलता है।[6] जो कि जैन ग्रंथ चित्रों में भी दृष्टव्य है।

पालड़ी–अहमदाबाद स्थित जैन परिचय विद्या भवन में ग्रंथांक सं. 166 पर संग्रहित एवं 1700 ई. में रचित विजयासेठ–विजयासेठानी रास, नामक ग्रंथ के एक चित्रित पृष्ठ पर बने विवाह समारोह के दृश्य नामक चित्र में मुग़ल चित्र शैली के समान चित्रभूमि को अनेक खण्डीय अन्तराल व्यवस्था में आबद्ध करते हुए आकृतियों को संयोजित किया गया है। जिससे चित्र संयोजन में दृष्टि घूमती हुई दिखाई पड़ती है तथा चित्र में एकरूपता का समापन हो जाता है। चित्र में स्थापत्य को खड़ी रेखाओं द्वारा बनाते हुए अवरोध रूप में लम्बवत्, शक्ति की दूसरी रेखा को प्रस्तुत कर अवरोध की तीव्रता को कम करने हेतु संधि रेखा का प्रयोग स्पष्ट परिलक्षित होता है।

देवसानोपाड़े भण्डार, अहमदाबाद में संग्रहित 'उपदेशमाला' नामक ग्रंथ जिसका समय यू.पी. शाह ने 17वीं शताब्दी के अन्त का बताया है, जबकि मोतीचन्द्र ने 18वीं शताब्दी बताया है,[7] के एक चित्रित फलक पर चित्रकार ने वन्य एवं जलचर प्राणियों के चित्र संयोजन में अन्तराल को सन्तुलित करने हेतु दोनों ओर दो विशाल वृक्षों का अंकन किया है, साथ ही मध्य भाग से कुछ हटकर पहाड़ी का अंकन एवं पृष्ठभूमि को सन्तुलित करने हेतु पहाड़ी के ऊपरी भाग में एक अन्य वृक्ष को निकालते हुए दर्शाया गया है। साथ ही मध्य भाग में सियार द्वारा कछुए को देखते हुए एवं इन आकृतियों को सन्तुलित करने हेतु एक ओर दो खड़े हुए सियार व दूसरी ओर जल में तैरते हुए कछुए का अंकन किया गया है। मध्य भाग को सन्तुलित करने हेतु पहाड़ी में से निकलते हुए सियार का अग्रभाग दर्शाया गया है। (देखिए चित्र सं. 4) इस प्रकार उक्त चित्र में चित्रकार सन्तुलन एवं सामंजस्य का उद्‌भुत संयोजन करने में सफल रहा है।

लाल भाई दलपत भाई संग्रह अहमदाबाद स्थित हंसराज–वस्तराज चौपाई सचित्र (समय 1680 ई.) के एक फलक पर चित्रकार ने लम्बवत् अथवा क्षितिज रेखाओं का प्रयोग करते हुए चित्र के तीनों भागों अर्थात् पृष्ठभूमि, मध्यभूमि एवं अग्रभूमि को समान कुशलता एवं परिश्रम के साथ सावधानी से विभाजित कर चित्र में अत्यधिक स्थानान्तरण या दूरी भी दृष्टव्य है। इसके अतिरिक्त मध्यभूमि में मानवाकृतियों के साथ स्थापत्य का अंकन अति उल्लेखनीय है। इस प्रकार इन चित्रों के संयोजन में यथा स्थान राजप्रासाद, बारादरी (बरामदें) एवं वृक्षों के अंकन को भी महत्त्व दिया है। (चित्र सं. 6, 7)

संयोजन व कला तत्त्वों का पूर्णतया से पालन करते हुये संवत् 1813 (1756 ई.) के भक्तामर–स्रोत सचित्र के चित्रित पृष्ठों पर बने चित्रों का निर्माण अति उल्लेखनीय है। यह ग्रंथ भरतपुर के जैन पंचायती मन्दिर में संग्रहित है। इसके एक चित्रित फलक पर कथा वस्तु के विभिन्न दृश्यों को चित्रित करने के उद्देश्य से अन्तराल को चार भागों में विभक्त किया गया है एवं अनेक दृष्टि बिन्दुओं से समझी गई वस्तुओं को सौन्दर्य पूर्ण तल–समायोजना के अन्तर्गत ही आलेख्य स्थान को सजाया गया है, साथ ही क्षितिज रेखा को पर्याप्त ऊँचा रखा गया है, जिससे चित्रकार चित्रतल पर भावों की अभिव्यक्ति हेतु भरपूर लाभ उठा सके। इस संयोजन में बादल को भी अपने ढंग से चित्र सौन्दर्य की वृद्धि हेतु लहरदार एक पतली सी पट्टी के रूप में छोड़ दिया है।[8] साथ ही खाली जगह को पुष्प–पत्तियों द्वारा सन्तुलित करने का प्रयास भी चित्र संयोजन में दृष्टव्य है। उक्त

संयोजन राजस्थानी चित्रशैली से प्रभावित चित्र संयोजन है। (चित्र सं. 8, 9)

जैन ग्रन्थ चित्रों में कला सिद्धान्तों के आधार पर चित्र संयोजन की पराकाष्ठा नरेन्द्र सिंह सिंधी के निजि संग्रह कोलकात्ता में स्थित 1624 ई. में रचित व उस्ताद शालिवाहन द्वारा चित्रित शालिभद्र महामुनि चरित्र नामक ग्रंथ में देखने को मिलती है। चित्र के संयोजन में चित्रकार ने अन्तराल को अनेक खण्डीय अन्तराल व्यवस्था में आबद्ध करते हुए कला सिद्धान्तों का पालन किया गया है। जिससे चित्र में प्रवाह या गति स्वतः ही देखने को मिलती है। साथ ही प्रकृति के संयोजन में पृष्ठभूमि को नीचे वर्णों से युक्त हल्के–गहरे बादलों तथा नीचे की ओर द्वितीय भाग में मानवाकृतियों का अंकन व तृतीय भाग में पर्वत सदृश पठार की ओट लिये नारी आकृतियाँ उचित प्रमाण में चित्रित है। भूरे रंग युक्त उबड़–खाबड़ पठार का एक मुख्य भाग चित्र की अग्र–भूमि में अति मनमोहक ढंग से दर्शाया गया है, अन्तराल को सन्तुलित करने हेतु प्रकृति में प्राप्त वृक्षों का अंकन, जल एवं इसमें विचरण करते हुए व वार्तालाप में निमग्न पक्षी इत्यादि सभी का चित्रण चित्रकार की कल्पनाशीलता की पराकाष्ठा को दर्शाते हैं। (चित्र सं. 10)

निष्कर्ष

अतः जैन ग्रंथ चित्रों के विश्लेषण एवं गहन अध्ययन के उपरान्त हम कह सकते हैं कि जैन ग्रंथ चित्रों में कलात्मक तत्त्वों के साथ ही कला सिद्धान्तों का पालन अन्य समकालीन चित्र शैलियों की भाँति ही अति सुन्दर ढंग से किया गया है। साथ ही अपनी निजी शैली का विकास भी किया। आधुनिक चित्रकार आज भी इन ग्रंथ चित्रों से प्रेरित होकर नये–नये संयोजनात्मक चित्रों का निर्माण कर रहे हैं। और भविष्य में भी ये ग्रंथ चित्र कलाकारों को अनुकरणीय रहेगें। ऐसे बहुत से समकालीन चित्रकार है जिनकी कलाकृतियों में आज भी जैन ग्रंथ चित्रों के मूल संयोजनात्मक तत्त्वों को समाहित किया गया है।

पाद टिप्पणी

1. *शर्मा, एस.के. एवं अग्रवाल आर.ए. : रूपप्रद के मूलाधार, पृ. 55; मेरठ, 1988.*
2. *नोबलर, एन. : द डायलॉग, न्यूयॉर्क, पृ. सं. 105–6, हॉल्ट–1971.*
3. *दास, रायकृष्ण : भारतीय चित्रकला, पृ. 41, इलाहाबाद–1969.*
4. *शाहा, यू.पी. : मोर डॉक्यूमेंट्स जैन पेन्टिंग एण्ड गुजराती पेन्टिंग्स ऑफ सिक्सटीन्थ एण्ड लेटर सेन्चूरिज, पृ. 9–12, अहमदाबाद–1976.*
5. *खण्डालावाला, कार्ल एवं दोषी सरयू : जैन कला एवं स्थापत्य भाग–3; (मू. सं. घोष, अमलानन्द) पृ. 416, नई दिल्ली–1975.*
6. *सेन, गीति : पेन्टिंग्स दी अकबरनामा, फलक सं. 56–57, नई दिल्ली– 1984.*
   वर्मा सोमप्रकाश : आर्ट एण्ड मेटीरियल कल्चर इन द पेन्टिंग्स ऑफ अकबर्स कोर्ट, फलक सं. 13, पृ. 15–25, नई दिल्ली–1978.
7. *चन्द्र, मोती एवं शाह, यू.पी. : न्यू डॉक्यूमेंट्स ऑफ जैन पेन्टिंग्स, पृ.सं. 36–37, बम्बई–1975.*
8. *नोबलर, एन. : द डायलॉग, न्यूयॉर्क, पृ. 104–105, हॉल्ट, 1971.*

चित्र सं. 1 कालकाचार्य–कथा (14वीं शता0) नेशनल म्यूजियम, दिल्ली

चित्र सं. 2 कालकाचार्य–कथा (14वीं शता0) स्वर्णाक्षरी, प्रा0 वि0 प्र0, जोधपुर

चित्र सं. 3 कल्पसूत्र–स्वर्णाक्षरी (14वीं शता0 उत्तरार्द्ध) नेशनल म्यूजियम, दिल्ली।

चित्र सं. 4 चंदराजानो–रास, संवत्–1716 (1659 ई0) लाल भाई दलपत भाई विद्या मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात)

चित्र सं. 5 उपदेश माला (17–18वीं शता0) देवसानो पाड़ो–भण्डार–अहमदाबाद (गुजरात)

चित्र सं. 6 हंसराज–वत्सराज चौपाई (रास), 1680 ई लाल भाई दलपत भाई विद्या मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात)

चित्र सं. 7 हंसराज–वत्सराज चौपाई (रास), 1680 ई लाल भाई दलपत भाई विद्या मंदिर, अहमदाबाद (गुजरात)

चित्र सं. 8 भक्तामर श्रोत, संवत् (1813)–1756 ई. जैन पंचायती मंदिर, भरतपुर (राज0)।

चित्र सं. 9 भक्तामर श्रोत, संवत् (1813)–1756 ई. जैन पंचायती मंदिर, भरतपुर (राज0)।

चित्र सं. 10 शालिभद्र–महामुनि चरित्र, 1624 ई0, श्री नरेन्द्र सिंह सिंधी, निजी संग्रह–कोलकाता (पं0 बंगाल)